Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN:2584-184X

Review Paper

स्वच्छन्दतावादी काव्य चिन्तन:स्वरूप और वैशिष्ट्य

प्रो दीपक प्रकाश त्यागी

हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा तथा पत्रकारिता विभाग,

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर ,उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author: * प्रो दीपक प्रकाश त्यागी

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.20459775

सारांश

यह शोध-पत्र हिंदी साहित्य-समीक्षा में स्वच्छंदतावादी काव्य-चिंतन का विश्लेषण करता है, जिसमें मुख्य रूप से दो प्रमुख समीक्षक-चिंतकों — आचार्य नंददुलारे वाजपेयी और डॉ. नगेंद्र — के काव्यशास्त्रीय अवदान को केंद्र में रखा गया है। यह आलेख यह स्थापित करता है कि छायावादी कवि-समीक्षकों ने पाश्चात्य स्वच्छंदतावाद से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी अपनी भारतीय ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक जड़ों से स्वयं को कभी विच्छिन्न नहीं किया। आलेख में वाजपेयी जी की उस आलोचना-दृष्टि का विवेचन किया गया है जिसमें उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'लोकधर्म' सिद्धांत की सीमाओं, उनके व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों तथा आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रति उनकी उदासीनता को रेखांकित किया। साथ ही यह भी दिखाया गया है कि वाजपेयी जी ने भारतीय रस-सिद्धांत एवं वर्ड्सवर्थ-कॉलरिज की स्वच्छंदतावादी सौंदर्यदृष्टि के समन्वय से एक नई काव्य-समीक्षा-भूमि का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त, डॉ. नगेंद्र के उस समन्वयवादी चिंतन का परीक्षण किया गया है जिसमें उन्होंने भारतीय रसशास्त्र तथा पाश्चात्य समीक्षा-परंपराओं — रिचर्ड्स, क्रोचे, अरस्तू — के मध्य साम्य-भूमि की खोज करते हुए रस को सार्वकालिक एवं सार्वभौम काव्य-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा रसानुभूति को अनिवार्यतः आनंदमयी चेतना माना। दोनों समीक्षकों ने मार्क्सवादी एवं मनोविश्लेषणवादी दृष्टियों को अस्वीकार करते हुए मानवतावादी एवं भावात्मक साहित्य-दृष्टि का पक्ष लिया। निष्कर्षतः यह शोध-पत्र यह सिद्ध करता है कि हिंदी का स्वच्छंदतावादी काव्य-चिंतन एक विशिष्ट, सांस्कृतिक रूप से सजग बौद्धिक आंदोलन है जिसने परंपरा और आधुनिकता तथा प्राच्य और पाश्चात्य के मध्य सेतु का कार्य किया।

Manuscript Info.

- ✓ **ISSN No:** 2584- 184X
- ✓ **Received:** 20-07-2025
- ✓ **Accepted:** 26-08-2025
- ✓ **Published:** 30-08-2025
- ✓ **MRR:3(8):**2025;59-67
- ✓ **©2025, All Rights Reserved.**
- ✓ **Peer Review Process:** Yes
- ✓ **Plagiarism Checked:** Yes

How To Cite this Article

प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. स्वच्छन्दतावादी काव्य चिन्तन:स्वरूप और वैशिष्ट्य. Ind J Mod Res Rev. 2025;3(8):59-67.

कुंजी शब्द: स्वच्छंदतावाद, छायावाद, रस-सिद्धांत, हिंदी काव्य-समीक्षा, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, लोकधर्म, सौंदर्यानुभूति, भारतीय काव्यशास्त्र, तुलनात्मक काव्यशास्त्र

© 2025 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

परिचय

छायावादी कवि चिन्तकों प्रसाद, पंत, निराला पर जितना प्रभाव अपनी परम्परा है. तो नहीं, फिर भी कुछ प्रभाव रोमाण्टिक साहित्य शास्त्र का भी है। किन्तु पाश्चात्य जगत के स्वच्छन्दतावादी चिन्तन से प्रभाव ग्रहण करने पर भी छायावाद के कवि चिन्तकों ने अपनी भूमि की चिन्ता से अपने को काटा नहीं। इनकी प्रेरणाएं, संघर्ष, मंथन चिन्तन की सामग्री अपने देश की ऐतिहासिक सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ी हुई है। इस दृष्टि से नन्ददुलारे वाजपेयी जी का कथन द्रष्टव्य है।

'खेद और आश्चर्य की बात है कि हमरे कतिपय समीक्षकों ने इस अत्यन्त सीधी और सच्ची बात को समझने की चेष्टी नहीं की कि हमारे इस युग के साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है तथा इससे भिन्न वह और कुछ हो भी नहीं सकती थी। राष्ट्रीयता ने हमारे समस्त जीवन को अनेक रूपों में आन्दोलित कर रखा था और हमरे कवि और लेखक भी इस दुर्दनीय प्रभाव से बच नहीं सकते थे।' 1

'न तो वादों के क्षेत्र से, न साहित्यिक रचना या समीक्षा की भूमियों से ही हमें पश्चिमी कलम अपने देश में लगनी है। रचना और समीक्षा की भूमियों में स्वतंत्र रहनी चाहिए। पश्चिम की नई रचनाओं में नई बारीकियां हैं शैली का अनोखापन है और सौन्दर्य है, किन्तु गरिमा के बदले एक उच्छृंखलता भी है जो पश्चिमी जीवन प्रवाह की गति- विधि का परिणाम है, और समीक्षा के क्षेत्र में यद्यपि हमें पश्चिम से बहुत कुछ सीखना है, पर अपना बहुत खोकर नहीं। भारतीय समीक्षा-विधियोंयों का नया अनुशीलन और अन्वेषण अपेक्षित है।'2

कहना न होगा कि स्वच्छन्दतावादी समीक्षक भी छायावादी कवियों की भाँति भारतीय दर्शन और ज्ञान के प्रतीक एवं मूल्यों के प्रति सचेत हैं। जहाँ पश्चिम है, वह भी भारतीय परम्परा की सांस्कृतिक संवेदन शक्ति के साथ घुल-मिलकर है। इनमें जड़ताओं के प्रति अस्वीकार का साहस है तो नवीन सृजनशीलता का स्वागत भी।

छायावाद के आलोचक विशेषतः नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी, शान्तिप्रिय द्विवेदी ने हिन्दी सैद्धान्तिक समीक्षा में दिखाई पड़ने वाली जड़ता को तोड़कर एक नयी दृष्टि की तलाश किया। इसने प्राचीन संस्कृत सैद्धान्तिक की रूढ़ियों तथा रीतिकालीन पिष्ट पोषण से भरी बोझिल शास्त्रीयता का बहिष्कार करते हुए चिन्तन को नयी सर्जनात्मक से जोड़ा। प्राचीन सिद्धान्तों को अपने समय की चिन्ता से निकली हुई परिस्थितियों के सापेक्ष रखकर मूल्यांकन का नया पथ सृजित किया। कृष्ण दत्त पालीवाल का कथन है, 'प्राचीन नियमों के प्रति अनादर भाव के मूल में यह भावना भी सक्रिय थी कि वे साहित्य सिद्धान्त अब धीरे-धीरे शास्त्र बन गए हैं। उनमें नए सृजन के साथ न्याय की शक्ति नहीं रही है।'3 ऐसी स्थिति में एवं ऐसे परिवेश में स्वच्छन्दतावादी आलोचकों ने समसामयिक साहित्य के विरोधियों के प्रहार सहते हुए काव्य चिन्तन के अनेक नये प्रतिमानों से तो परिचित कराया ही साथ में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्तों का तुलनात्मक मूल्यांकन करते हुए हिन्दी काव्य चिन्तन का विशिष्टता की अहसास कराया यह विशिष्टता थी-मुक्ति चेतना समानता, स्वायत्ता के जो मूल्य उस समय के सामाजिक राजनैतिक जागरण में दिखाई दे रहें थे, वही उस समय की साहित्यिक सर्जना में। तिलक गांधी में स्वराज्य के लिए तड़प है, वह और भी अधिक सर्जनाशील होकर प्रसाद, निराला, पंत की काव्य दृष्टि से जुड़ जाती है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन बहुत सार्थक है, 'इस व्यापक राष्ट्रीय जागृति की हलचल में ही हमारा यह साहित्य पनपा और फूला-फला है। इस स अभूतपूर्व जागृति केन्द्र से पृथक रखकर हम अपने इस साहित्य को परख नहीं सकेंगे।"4

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी :साहित्य शास्त्र का नया पथ

स्वच्छन्दतावादी काव्य चिन्तकों में वाजपेयी जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि कि उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से समीक्षा की शक्ति ग्रहण की, फिर भी उनसे टकराकर ही राश्ता सृजित कर सके। आचार्य शुक्ल के चिन्तन में उन्हें अनेक सीमाएं दिखाई दीं।वे मानते हैं कि शुक्ल जी के चिन्तन में पाश्चात्य बुद्धिजीवियों का अंश अधिक है। इतना ही नहीं उनका विचार है कि

- शुक्ल जी में उच्चकोटि की काव्य-रसज्ञता थी, इसमें सन्देह नहीं। साथ ही उनकी कुछ निजी रुचियाँ और आग्रह भी थे, जिन्हें उन्होंने दबाया नहीं। रचनाकार और समीक्षक के लिए अलग-अलग रास्तें हैं। एक के लिए व्यक्तिगत अभिरुचि का अपार क्षेत्र खुला है, दूसरे के लिए उसकी गुंजाइश नहीं।5
- इतना ही नहीं बाजपेई जी यह मानते रहे कि 'जहाँ-जहाँ और जब-जब शुक्ल जी ने काव्यमाप में कुछ व्यक्तिगत रुचियों को प्रवेश करने दिया-उदाहरण के लिए कथात्मक साहित्य या प्रबन्ध रचना को मुक्तककाव्य से ज्यादा तरजीह दी और निर्गुण-सगुण की दार्शनिक धाराओं के सगुण पक्ष की वकालत की, वहां-वहां उन्हें अक्सर काव्य की परख करने में कठिनाई हुई।'
- जहां तक काव्य-विवेचन का प्रश्न है, शुक्लजी ने सर्वथा असंग होकर काव्य को नहीं देखा, व्यक्तिगत आदर्शों और विचारों की छाया से उसे ढक रखा है। इसी से मुक्तक काव्य, प्रगीत काव्य आदि के प्रति वे विरोधी संस्कार लेकर जीते रहे हैं। 6
- नव्यतर सामाजिक प्रगति से घनिष्ठ संबंध न रहने के कारण शुक्लजी साहित्य की आध पुनिक प्रवृत्तियों से उतना अधिक तादात्म्य नहीं स्थापित कर सके, जितना उनके जैसे इस क्षेत्र के अधिकनायक से आशा की जाती थी। 7
- वर्तमान साहित्य की प्रेरक शक्तियों, नवीन व्यक्तियों और नए विकास के अनुरूप उनकी रचनाओं की वास्तविक छानबीन करने में भी शुक्लजी एक प्रकार से उदासीन रहे हैं। वे अभिव्यक्ति की प्रणाली तक ही पहुंचे। 8
- उपर्युक्त विचार के आधार पर बाजपेई जी अनेक निष्कर्ष निकालते हैं
- शुक्ल जी का 'लोकधर्म' भी जीवन के प्रतिशील स्वरूपों का आकलन नहीं करता। वह रूढ़िबद्ध होकर श्रेष्ठ काव्य की पहचान में असफल सिद्ध हुआ है। इसका कारण यही है कि इस सिद्धान्त के पीछे शुक्ल जी ने काव्य निर्माणात्मक और मानसिक उपकरणों की पूरी अवहेना की है।
- प्राचीन सिद्धांत के साथ 'लोक-धर्म' का साहचर्य कराकर शुक्लजी ने उसे परिमार्जित स्वरूप अवश्य दिया है, पर उसे कलात्मक, मनोवैज्ञानिक और प्रगतिशील आधार पर प्रतिष्ठित करने में शुक्लजी समर्थ नहीं हुए। उन्होंने एक सिद्धांत के पीछे काव्य के निर्माणात्मक उपकरणों, मानसिक अवयवों और सामाजिक चेतना की उपेक्षा की है।
- काव्य की सार्वजनीन रसानुभूति जो सब वादों से ऊपर है, शुक्लजी के नीति-चक्र के फेर में पड़ गई है। काव्य में साधारणीकरण के स्वरूप का निर्देश करते हुए उन्होंने राम के निरूपण में ही रस की

© 2025 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

सत्ता मानी है, रावण के निरूपण में नहीं। स्पष्ट है कि काव्य से अपर नीति की का स्थूल शासन शुक्लजी नहीं छोड़ सके और भारतीय काव्यशास्त्रियों के रस तत्त्व की ऊंचाई को नहीं छू सके।

- उन्होंने अपनी दार्शनिक मान्यताओं को कहीं भी स्पष्ट करने की श्रेष्ठा नहीं की। इसी का परिणाम यह हुआ कि सारा मध्यकालीन भक्ति-काव्य शुक्लजी द्वारा दो कठघरों में बंद कर दिया गया है। उन्हें हम संक्षेप में व्यक्तिगत साधन और लोक-धर्म के कठघरे कह सकते हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्होंने आलोचना में कुत्रिम विभेदों का आग्रह किया और काव्यालोचना में भी एक वर्ग को व्यर्थ नीचा देखना पड़ा।
- द्विवेदी-युग की आदर्शवादिता तथा नैतिकता का ही बुरा परिणाम उनकी समीक्षा में यह हुआ कि वे सूर और तुलसी के बीच एक-सी प्रेरणाएं उपलब्ध होने पर भी खाई खींचते रहे हैं और इसी कारण से उनका आधुनिक काव्य का वर्गीकरण भी लड़खड़ा गया है।
- शुक्लजी की सारी विचारणा द्विवेदी-युग की व्यक्तिगत, भावात्मक आर आदर्शोन्मुख नीतिमत्ता पर स्थित है। समाजशास्त्र, संस्कृति और मनोविज्ञान की वस्तुमुखी मीमांसा उन्होंने नहीं की है।
- शुक्लजी ने महाकाव्य के साथ एक और पंख लगा दिया है-नायक में शक्ति, शील और सौंदर्य की पराकाष्ठा। किसी भी काव्य को इस तरह नियम से नहीं बांधा जा सकता है। फ्रांसीसी और रूसी क्रांति की प्रेरणाओं से बहुत सी कृतियों के नायक कुरूप और दुःशील हैं। अतः शील, शक्ति और सौंदर्य की पराकाष्ठा वाला प्रतिमान भी काव्यालोचनात्मक भ्रांति का ही शिकार है।
- काव्य में प्रकृति चित्रण संबंधी शुक्लजी की धारणा एक स्वतंत्र रचनाकार के लिए तो ठीक कही जा सकती है, किंतु कला की आलोचना में ऐसा कोई सिद्धांत लागू नहीं होता। प्रकृतिवादियों की परम्परा का अनुकरण कोई बहुत अच्छी बात नहीं है।
- इस प्रकार वाजपेयी जी अपनी चिन्तनयात्रा के पहले पड़ाव पर शुक्लजी की सीमाओं की खोजते हैं, किन्तु कहीं-कहीं शुक्लजी मूल अवधारणाओं से अतार्किक रूप में टकराने के कारण भटक जाते हैं। फिर भी काव्यचिन्तन के इतिहास में वाजपेयी जी की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके काव्यचिन्तन की दिशा को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है-

साहित्य एवं जीवन

वाजपेयी जी साहित्य की सत्ता को जीवन सापेक्ष मानते हैं किन्तु वे मार्क्सवाद के सामाजिक-आर्थिक वर्ग-संघर्षवाद से असहमत हैं क्योंकि यह साहित्य को स्वच्छन्द पद देने के स्थान पर विचारधारा का उपनिवेश बना देता है। वाजपेयी जी का कथन है, 'साहित्य को मिथ्या यथार्थ की जिस अंधेरी गली में ले चलने का उपक्रम करता है, हम उसकी निन्दा करते हैं' 8 वाजपेयी जी साहित्य एवं जीवन के रिश्तों को लेकर वर्ड्सवर्थ, विक्टर गो से प्रभावित हैं तो मानवतावाद के प्रश्न पर टल्सटाय से। उनके विचार को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है-

- साहित्य की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, यद्यपि जीवन-सापेक्ष है। जीवन-निरपेक्ष कला के लिए कला भ्रांति है, जीवन-सापेक्ष पेक्ष्य कला के लिए कला सिद्धांत है।
- साहित्य और जीवन के घनिष्ठ संबंधों का निर्धारण राष्ट्रीयता के क्षणिक मोह से ऊपर मानवता की विशाल पृष्ठभूमि पर होना चाहिए।
- अंगरेजी साहित्य में में मैथ्यू आर्नाल्ड तथा वाल्टर पेटर दो अलग-अलग दृष्टियों से साहित्य पर मुग्ध हुए है, पर वे प्रादेशिक सीमाओं में बंधे बंधे लेखक हैं।
- जो समीक्षक साहित्य एवं जीवन के सम्बन्ध को साहित्यकार के व्यक्तिगत बाह्य जीवन से जोड़ता है। इस पद्धति से वे साहित्य का लाभ ही समझते हैं। परन्तु जीवन के रहस्य और अज्ञात पक्ष को इसमें ठीक से जानने की अपेक्षा है।
- साहित्य एवं जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी जीवन, साहित्य से बहुत बड़ी चीज़ है। जीवन का अनवरत गति है, धारा है एवं साहित्य जीवन की रमणीय एवं प्राणदायिनी बूंदों का संचयन है। साहित्य में जीवन ही नहीं जीवन का कामनाएं भी (तृप्त अतृप्त) रहती हैं।

साहित्य एवं जीवन सम्बन्धी इन्हीं मान्यताओं के कारण वे कलावाद, व्यक्तिवाद का आचार्य शुक्ल की तरह ही विरोध करते हैं। 'साहित्य वैयक्तिक सुख-दुःख की भूमि न होकर सार्वजनिक दुःख-सुख की भूमि है।' 9

काव्य मूल्य एवं महत्त्व

वाजपेयी जी व्यावहारिक समीक्षा के समीक्षक हैं, किन्तु आधुनिक साहित्य, 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं सदी' में अनेक स्थलों पर उनकी काव्यशास्त्रीय दृष्टि का प्रमाण मिलता है। काव्य या साहित्य के मूल्य एवं उसके महत्त्व को लेकर वाजपेयी जी की धारण को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है-

- कविता जीवन से (मध्यकालीन काव्य) दूर जा पड़ी, केवल काव्य-रसिकों को उसमें 'अलौकिक' रस मिलता रहा। नए युग में आकर ये समस्त रूढ़ियां टूटने लगीं।
- मध्यकालीन काव्य या कला-पद्धति में धार्मिक-प्रभाव से जो रूढ़ियां बन गई थीं, वे 'अलौकिकता' का नाम लेकर कला का बड़ा अनर्थ कर रही थीं। काव्य के विषय, वर्णन शैली, उपादान वहां घेरे में घिरे हैं।
- कला की प्राचीन परिपाटियों में परिवर्तन आने के कारण नायक का धीरोदत्त वाला सांचा बेकार-सा हो गया। प्राचीन काव्यों में कला की जो मर्यादाएं थीं, वे सभी नये परिवेश के दबाव से अमान्य ठहरा दी गई।
- बदलती हुई नवीन पाठकीय संवेदना, रुचि एवं संस्कारों ने प्राचीन काव्य-रूढ़ियों के प्रति घोर अनादर का भाव व्यक्त किया।
- आज का नया पाठक न तो रावण के व्यवहार को ही स्वीकृति दे पाता है और न सीता की अग्नि-परीक्षा की निर्ममता को ही सहन कर सकता है। इसी कारण कला के प्राचीन बंधन टूटने लगे और नई वास्तविकता प्रतिष्ठित होने लगी।
- नई कला भी इसी दृष्टि से अधिक कल्पना-प्रवण, अधिक मानवीय एवं अधिक संवेदनशील हो चली। वह जीवन-व्यवहारों में वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और तज्जनित अनुभूति का आदर करने लगी।
- पुराने आख्यानों तथा प्रसंगों को अपनाना तो ठीक है पर काव्य की पुरानी रूढ़ियों को अपनाना कवि-कल्पना, काव्य-विचार के लिए बाधक ही कहा जायेगा।

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

- नई अनुभूतियों की भीतरी बनावट को समझे बिना सही काव्य-दृष्टि का निर्माण असम्भव होता है। इस बात को बिना समझे 'हरिऔध' तथा 'प्रसाद' जी की अनुभूति के अन्तर को नहीं पहिचानना जा सकता है जिसकी पहिचान साहित्य में बहुत जरूरी है।
- आलोचना को पुराने रसालंकार शैली पर चलाना नवीन सृजनात्मकता का सच्चा अपमान है। अक्सर कहा जाता है कि हिंदी समीक्षा का का नया भावना विदेशों देशों की नकल पर बना है। इसमें पाश्चात्य मध्यवर्गीय उत्थान का काल के आदर्श और अनुकृति है। 'इस सम्बन्ध में मेरा कहना इतना ही है कि ईट, चुना, गारा और मिट्टी जब स्वदेशी हैं, तब केवल डिजाइन विदेशी होने से क्या। और वह भी इसी अर्थ में विदेशी कही जा सकता है कि विदेशों में इससे मिलती-जुलती इमारतें बन चुकी हैं।
- काव्य का महत्व तो काव्य के अन्तर्गत ही है, कि है, किसी भी स्वीकृतियों के साथ हम यह स्वीकार नहीं कर सकते कि काव्य और साहित्य की स्वतंत्र सत्ता है, उसकी स्वतन्त्र प्रक्रिया है और उसकी परीक्षा के स्वतन्त्र साधन है।
- काव्य की सामयिक उपयोगिता और आवश्यकता को परखने की शक्ति भी हममें होनी चाहिए।
- काव्य और कला की कोई माप स्थिर न होने के कारण नये समाजशास्त्री (मार्क्सवाद) और मनोविश्लेषक इस क्षेत्र पर मनमाने हमले कर रहे हैं और नई विद्या इस पर आजमाने में लगे हुए हैं। ये सभी यदि तटस्थ वैज्ञानिक अनुशीलन में प्रवृत्त होते तो साहित्य का उपकार कर सकते थे किन्तु उनका तो लक्ष्य है साहित्य-क्षेत्र में अपनी सत्ता जमाना और साहित्य की अपनी सत्ता को मिटा देना। छायावाद तथा रहस्यवाद पर भी इनका आक्रमण नादिरशाही ढंग का है।
- साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति है।' अधिक साहित्य को स्पष्ट करते हुए उनका कथन है कि, 'आत्मानूभूति साहित्य का प्रयोजन है, इसका अर्थ हम यह लेते हैं कि आत्मानुभूति की प्रेरणा से ही साहित्य की सृष्टि होती है।' (वही)रस चिन्तन एवं काव्यानुभूति का स्वरूप एवं प्रक्रिया
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रस को अलौकिकता के पद से उतारकर उसे लोकधर्म से जोड दिया था। वाजपेयी जी ने रस लोकवादी भूमिका को और भी अधिक व्यापक बनाया। रस सिद्धान्त की व्याख्या के क्रम में वे कॉलरिज, कीट्स की मान्यताओं से टकराते हैं, तो मनोविश्लेषणवादी तथा सौन्दर्यशास्त्रीयों से भी। कृष्णदत्त पालीवाल का कथन है, 'सृजनात्मक अनुभूति को स्वच्छन्दतावादियों की भाँति काव्य का प्रेरक हेतु मानने के बाद ही वे रस-सिद्धान्त की ओर प्रवृत्त होते हैं। स्वच्छन्दतावादी के प्रभाव में ही उन्होंने संस्कृत रस शास्त्र के कुछ विशिष्ट पक्षों को दृढ़ता के साथ अस्वीकार ही नहीं किया, उनकी 'पाखण्ड' दृष्टि पर दुख व्यक्त किया।' 10 इस सन्दर्भ में वाजपेयी जी के निम्नलिखित विचार है-
- रसवादी काव्य की आत्मा रस को 'आलौकिक' मानते हैं। यह अलौकिकता का पाखण्ड केवल उन्हीं तक रहता तो और बात थी। यह जिस असत्य आधार पर स्थित हुआ उसने साहित्य का बड़ा अनिष्ट किया। अलौकिकता के नाम पर बेधड़क लौकिकता ही बढ़ती गई और धीरे-धीरे उसने जो स्वरूप धारण किया, वह बड़ा ही हेय हुआ।
- एक बार आलौकिकता की प्रतिष्ठा कर न जाने कितने उच्छृंखल कवियों ने न जाने कितनी सप्तशतियों की सृष्टि की, जिनमें आदि से अन्त तक लौकिक भाव का सम्पूर्ण अभाव रहा।
- हमको स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस 'आलौकिकता' का पल्ला पकड़ कर कविगण साधारण जन समाज के सिर पर चढ़ गये और वहां से स्वयं अनियंत्रित रहकर हमारा नियन्त्रण करने लगे। इस प्रकार जन समाज का नियंत्रण न रहने के कारण कविता व्यक्तिगत हो गई, और यही कारण है कि मध्यकाल की संस्कृत-कविता में हासोन्मुख भारतीय जीवन की ही छाप दीख पड़ती है।
- रस सिद्धान्त की 'इस विपथगामिनी धारा को रोकने वाला एक भी दृढ़ और आवृत्त आलोचक नहीं हुआ, जो साहसपूर्वक साहित्य का सन्मार्ग दिखाता।
- भरत ने नाट्यशास्त्र में रस की चर्चा को नाट्य-शरीर तक सीमित कर दिया। यह साहित्यिक विश्लेषण बहुत सीमित है।
- बाह्यार्थपरक, आंगिक होने के कारण रसवाद अलंकारिक एवं हासोन्मुख रूप में ही सिमट गया।
- रसवाद ने एक-एक पंक्ति में रस ढूंढने की प्रथा चलाई और सहस्रों नायक-नायिकाओं के भेद-प्रभेट गिना दिये हैं। रस-पद्धति की विश्लेषण-प्रक्रिया में रचनाकार की भीतरी-बाहरी स्थिति का परिचय भी टूट गया।
- यह रस-सिद्धान्त 'स्थूल अगतिशील-नीति चक्र' बनकर रह गया। वाजपेयी जी रसानुभूति को 'संवेदना' का पर्याय मानते हैं। यह संवेदन सजग कलाकार की मानसिकता का अनिवार्य अंग है। अपनी इसी दृष्टि से वे 'रसानुभूति' को 'सौन्दर्यानुभूति' का पर्याय मानकर रसवाद की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, 'काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे, ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छवास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न करता है। इसी सौन्दर्य संवेदन को भारतीय पारिभाषिक शब्दावली में रस कहते हैं, वाजपेयी जी के इस कथन में पाँच तत्त्व उल्लेखनीय हैं-
- प्रकृतिभाव या अनुभूतियाँ
- नैसर्गिक कल्पना
- सौन्दर्यमय चित्रण
- भावोच्छवास
- सौन्दर्य-संवेदन

इन्हीं के सम्मिलन से रस उत्पन्न होता है। प्रथम तीन 'कवि' के लिए तथा अन्तिम दो कवि एवं सहृदय दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण है। कॉलरिज भी 'कल्पना सिद्धान्त' में तीन तत्त्वों को महत्त्वपूर्ण मानता है- (१) प्रकृत साहचर्य की भावना, (२) भावोच्छवास रूप सौन्दर्य संवेदन (३) कल्पना के द्वारा नूतन वस्तुओं की निर्माण क्षमता शक्ति । स्पष्ट है कि वाजपेयी जी अपने रसवाद के निर्माण में कॉलरिज के ऋणी हैं तो शुक्लजी के भी। शुक्लजी जिसे 'सौन्दर्यानुभूति' कहते हैं, उसे ही वाजपेयी जी 'सौन्दर्य संवेदन' कहते हैं। कहना न होगा कि दोनों के ही लिए 'काव्यानुभूति', 'सौन्दर्यानुभूति'; 'जीवनानुभूति' का पर्याय मानते हैं किन्तु वाजपेयी जी के रसवाद की एक सीमा यह है कि वे रस को भावोच्छ्वास मान लेते हैं, फिर भी वाजपेयी जी का महत्त्व कम नहीं है। उन्होंने

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

भारतीय रसशास्त्र तथा पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी चिन्तन में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

काव्यानुभूति की प्रक्रिया के विवेचन में किसी नये मत की स्थापना का प्रयन्त नहीं दिखाई देता, बल्कि वे संस्कृत काव्यशास्त्रियों के साधारणीकरण प्रमाता का कवि की संवेद्य अनुभूति से होता है। डॉ० नगेन्द्र के सिद्धान्त-चिंतन की भाँति ही अपना मत देते है- 'साधारणीकरण वास्तव में कवि कल्पित व्यापार का होता है, केवल किसी पात्र विशेष का नहीं।' 11 नगेन्द्र जी 'कवि की अनुभूति से साधारणीकरण' मानते हैं, तो वाजपेयी जी 'कवि-कल्पित समस्त व्यापार से साधारणीकरण', वास्तव में दोनों में कोई भेद नहीं है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि

आचार्य वाजपेयी ने रहस्यवाद, आदर्शवाद, छायावाद, मार्क्सवाद एवं मनोविश्लेषण शास्त्र पर गम्भीर रूप से विचार किया है। मार्क्सवाद को लेकर उनका विचार ध्वसांत्मक रहा है। उनका कथन है-

- 'मुझे मार्क्स की सामाजिक और साहित्यिक प्रतिपत्तियाँ स्वीकार नहीं है। सामाजिक विकास क्रम में आर्थिक व्यवस्था को सर्वोपरि बताकर साहित्यिक तथा अन्य उपकरणों को उसका अनुवर्ती मान लेने का तर्क मुझे सुसंगत नही ं जान पड़ता।' 12
- यह एक विदेशी पद्धति है जिसका हमारे देश की जलवायु में पोषण नही ं हुआ। यह परम्पराहित है और एक राजनीतिक मतवाद का अंग बनकर आई है।' 13
- मार्क्सवाद में कलात्मक, आध्यात्मिक, भावात्मक मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं है।' 14
- मार्क्स का सिद्धान्त सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखता है, कला विवेचन से नहीं है।
- वाजपेयी जी का विचार यहाँ अंशतः ही सही है, क्योंकि मार्क्सवाद की भूमिका अनेक सन्दर्भों में प्रगतिशील दिखाई देती है। प्रगतिवादी कविता आन्दोलन इसका स्पष्ट प्रमाण है।
- मनोविश्लेषणशास्त्र को लेकर भी वाजपेयी जी आग्रही रहे हैं। वाजपेयी जी का मानना है कि इस विचारधारा में साहित्य की सामाजिक उपयोगिता पर ध्यान न देकर वैयक्तिक यथार्थ को सर्वस्व मानते हैं। उनका कथन है-
- यहां कवि सामाजिक प्रतिबन्धों के विरुद्ध अपनी दमित वृत्तियों का प्रकाशन करता है। वह उन प्रतीकों और उपमानो ं का प्रयोग करता है जो उसकी दमित चेतना द्वारा आविर्भूत होते हैं। इसीलिए वे मनोविश्लेषणवादी अन्तश्चेतना प्रधान कविता को वैयक्तिक, आदर्शहीन तथा लक्ष्यभ्रष्ट मानते हैं और उसे 'रुग्ण व्यक्तियों की सृष्टि' स्वीकार करते है।
- 'एक ओर तो इनसे रचनाएं प्रतीकात्मक एवं दुर्बोध बनती हैं, दूसरी ओर यह सर्वमान्य के किसी काम की नहीं।'
- छायावाद को लेकर वाजपेयी जी के चिन्तन का फलक बहुत विस्तृत है। वे छायावादी कविता की मुख्य प्रेरणा के रूप में जहाँ ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिवेश को मान्यता देते हैं। उनका कथन है, 'हमारे युग के साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है तथ इससे भिन्न वह और कुछ हो ही नहीं सकती थी।' 15 वे छायावाद को स्थूल द्विवेदी-युगीन इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया मानने के साथ ही उसे स्वच्छन्दतावाद की समानधर्मा दृष्टि काना आन्दोलन भी घोषित करते हैं। वे, 'द्विवेदी युगीन 'बौद्धिकता', 'नीतिमत्ता', उपदेशात्मकता के स्थान पर छायावाद में अपूर्व कल्पना-प्रवणता', 'वैयक्तिक वेदना', 'सौन्दर्य दृष्टि', 'प्रकृति और मानव', 'प्रेम कल्पना की आध्यात्मिक भूमि', स्वच्छन्दतावादी काव्यशैली' का दर्शन करते है। इसीलिए वे आचार्य शुक्ल की छायावाद सम्बन्धी मान्यताओं को अस्वीकार कर देते हैंइस छायावाद को हम पंडित रामचन्द्र शुक्लजी के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली विशेष नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी।' 16 इसमें सन्देह नहीं कि छायावाद की इतनी विस्तारवादी भूमिका देने के बावजूद परिभाषा देते समय भटक जाते हैं। वाजपेयी जी का कथन है, 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।' 17 कहना न होगा कि आध्यात्मिकता एवं रहस्यवाद का आग्रह ही वाजपेयी जी की समीक्षा का दुर्बल पक्ष बना। यद्यपि कि छायावाद में आध्यात्मिकता का संसार है, किन्तु पूरा काव्य 'आध्यात्मिक छाया का भान' नहीं है।

कहना न होगा कि मार्क्सवाद एवं मनोविश्लेषणशास्त्र पर वाजपेयी का विचार बहुत संगत नहीं है। वे इन दोनों वैचारिक दर्शनों पर आधारित प्रगतिवाद एवं प्रयोगवादी कविता को भी अस्वीकार देते हैं, 'हिन्दी साहित्य में भी ये प्रयोग चल रहे हैं, जिनमें कहीं तो मनोविश्लेषण की किसी पाठ्यपुस्तक से लिया गया कोई मंजा-मंजाया काव्य प्रतीक रखा मिलता है और कहीं मार्क्सवादी वक्तव्य का परिचायक कोई अधूरा या पूरा वाक्यांश जुड़ा दिखाई देता है। इस 'यथार्थवादी' कविता में वास्तविकता थोडी और प्रदर्शन अधिक है।' 18

इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रयोवादी कविता एवं नई कविता पर आक्षेप किए-

- प्रयोगवादी रचनाएं वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी पूरा नहीं करती हैं।' 19
- 'कवि का दायित्व व्यक्तिगत अनुभूति के प्रति, काव्य-सत्ता के प्रति तथा सामाजिक दायित्व के प्रति होता है। हमारे प्रयोगवादी कवियों में उनमें से एक भी पक्ष परिपुष्ट नहीं।' 20
- 'नयी कविता के कवि मानववाद और मानवतावाद का झूठा मुखौटा ओढ़कर व्यक्ति एवं वर्ग के टुच्चे वितण्डवाद का इजहार करते हैं। सामूहिकता से नितान्त दूर इन कवियों में उन संस्कारों की भयंकर कमी है, जो एक श्रेष्ठ और टिकाऊ काव्य को जन्म देती है।' 21
- 'नये रचनाकार काव्य की सहज और अंतरंग प्रेरणाओं से संचालित नहीं हैं। वे अधिकांश में श्रम सान्ध सान्ध्य और गढ़े हुए कवि हैं, जिन्होंने कवि-कर्म का बाना ग्रहण किया है।' 22

यहाँ पर वाजपेयी जी के विचार से सहमत हो पाना सम्भव नहीं हुआ। उनकी छायावादी रुझान इस काव्य को पर्याप्त सहानुभूति नहीं दे सकी। डॉ० कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में कहें तो. 'आ० नन्ददुलारे वाजपेयी की समान्त सैद्धान्तिक दृष्टि छायावादी काव्य की अनुभूतियों और संवेदनाओं के मर्म मर्म और मूल्यों का लेखा-जोखा है, रसशास्त्र की भावात्मकता, स्वच्छन्दतावाद की कल्पना, अभिव्यंजनावाद का सौन्दर्य दर्शन, रुसो को प्रगतिशील दृष्टि, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान की नवीन धमक उनमें एक साथ मिलती है।' राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पक्ष पर

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

विशिष्ट बल तो है, पर उनमें पश्चिम का प्रभाव कम नहीं है। फिर भी उनकी समाज - सापेक्ष्य काव्य दृष्टि, रसवाद की लोकाभिमुखता, लोकधर्मी संस्कार उनके चिन्तन का समृद्ध पक्ष है।

डॉ० नगेन्द्र का चिन्तन :काव्य शास्त्र की विशिष्ट दृष्टि

डॉ० नगेन्द्र के काव्यचिन काव्यचिन्तक रूप का साक्षात्कार 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका', रीतिकाव्य की भूमिका', 'अरस्तु का काव्यशास्त्र', 'काव्य का उदात्त तत्त्व', 'रस सिद्धान्त', विज्ञानीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका', 'नयी समीक्षा', 'नये सन्दर्भ, 'मिथक और साहित्य', 'शैली विज्ञान' 'साहित्य का समाजशास्त्र', 'आस्था के चरण' जैसे ग्रंथों में होता है। उनके विचार में भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतन को लेकर एक तुलनात्मक भाव दिखाई देता है, किन्तु वे रसवादी करते हुए रूप में सामने आते हैं और अपनी मान्यताओं भारतीय काव्यशास्त्र से शक्ति ग्रहण करते हुए भी उसकी पुष्टि के लिए पाश्चात्य सिद्धान्तों, प्रवृत्तियों, वादों, विचार दृष्टियों आदर्शों आदि का आश्रय लेते हुए दिखाई देते हैं। कृष्ण दत्त पालीवाल का कथन है, 'प्राच्य एवं पाश्चात्य सिद्धान्त-दृष्टि की अनेकता में एकता खोजने का प्रयास ही डॉ० नगेन्द्र की समीक्षा का मूल स्वर है। (पृष्ठ 506) इसका प्रमाण उनकी साहित्य सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यताएं हैं-

- कविता को व्यापक अर्थ में रस के साहित्य अथवा ललित वाङ्मय को मैं मूलतः आत्माभिव्यक्ति ही मानता हूँ। रागात्मक जीवन के सान्ह उसका अनिवार्य और अंतरंग सम्बन्ध है।
- मैं यह मानता हूँ कि कृतिकार अपना रा हूँ कि प्रत्येक साहित्यिक कृति का सम्बन्ध कृतिकार के व्यक्तित्व से है। अनिवार्यतः प्रतिफलित होता है। रागात्मक जीवन और उसके आधार पर निर्मित जीवन-दर्शन कृति में
- एक कलाकार अपनी रागात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से करता है और दूसरा प्रसंग या कथा के ब्याज से।
- वास्तव में अनुभूति ही एक प्रकार का संवेदन-मात्र है जिसको व्यकत करने के लिए प्रतीक और बिम्ब की आवश्यकता होती है।
- कलाकार का अपना भावबोध ही कला का मूल उपकरण है। अतः निर्मिति का सिद्धान्त अभिव्यक्ति से मूलतः भिन्न नहीं है। भेद केवल बलावल का है।
- तत्त्व दृष्टि से विचार करने पर सौन्दर्य चेतना का ही फुल है, प्रकृति का नहीं। अनेक कला-मर्मज्ञों ने सौन्दर्य की सर्जना में कलाकार की तटस्थ दृष्टि का ही प्रमाण माना है। इलियट का स्पष्ट कथन है कि कला भाव का मोचन नहीं, बल्कि भाव से पलायन है, अहम् की अभिव्यक्ति नहीं, वरन् अहम् का विसर्जन है।
- कृति में कलाकार अपने राग द्वेष व्यक्त करने के लिए या अपने अहं के परितोष के लिए कला की रचना नहीं करता, वरन् अपने राग द्वेष के परिष्कार के लिए या अहम् से मुक्ति पाने के लिए ही वह कला की साधना करता है। अभिव्यक्ति सिद्धान्त का इस स्थापना से कोई विरोध नहीं है, उसके अनुसार भी व्यक्तिगत राग द्वेष का उद्गार कविता नहीं है।

कविता या साहित्य के स्वरूप पर विचार भारतीय काव्यचिन्तन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। अन्य काव्य चिन्तकों की तरह ही नगेन्द्र जी भी 'कविता क्या है' पर विचार करते है। उनके अनुसार कविता के लिए रमणीय अनुभूति उक्ति वैचित्र्य और छन्द अर्थात् वर्ण संगीत और लय-संगीत कविता के लिए अनिवार्य है। इनमें से किसी एक का नाम कविता नहीं है, इन तीनों का समंजित रूप ही कविता है। कहना न होगा कि नगेन्द्र की इस मान्यता में पण्डितराज जगन्नाथ (रमणीयर्थ प्रतिपादक : **शब्द :** काव्यम्) एवं आई०ए० रिचर्डस (जिनमें सहृदय ही की अन्तवृत्तियों में सामंजस्य स्थापित करने की शक्ति हो) की अनुगूंज है, जिसे नामवर सिंह, जगदीश गुप्त एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि कृष्णदत पालीवाल के मान्दों में कहें तो बदलते हुए युग-सन्दर्भों में काव्यानुभूति की बनावट और रागात्मक संबंधों में आये परिवर्तन को समझाने वाली दृष्टि की एकांत उपेक्षा है।

डॉ० नगेन्द्र काव्य प्रेरणा के विवेचन में फ्रायड से प्रभावित दिखाई देते हैं। उनके शब्द हैं. 'मेरे मन के गहन स्तरों में सोई हुई वासना-रूप पीड़ा एक साथ द्रवित होकर आँखों में आ गई-मेरी कविता वेता के स्फुरण की ठीक ठीक यही कहानी है। सौन्दर्य के उद्दीपन से जब जीवन के संचित अभाव अभिव्यक्ति के लिए फूट पड़ते हैं, तभी तो कविता का जन्म होता है।' 23 इस प्रकार नगेन्द्र जी की दृष्टि में कविता का उद्रेक सौन्दर्य अर्थात् आनन्द और अभाव की भावमयी पूर्ति के रूप में होता है। **इसीलिए नगेन्द्र जी की मान्यता है-**

(१) काव्य के पीछे आत्माभिव्यक्ति की ही प्रेरणा है और यह प्रेरणा व्यक्ति के अन्तरंग अर्थात् उसके भीतर होने वाले आत्म और अनात्म के संघर्ष से उद्भूत होती है। कहीं बाहर से जानबूझकर प्राप्त नहीं की जा सकती।' 24

(२) हमारे आत्म का निर्माण जिन प्रवृत्तियों से होता है, उनमें काम वृत्ति का प्राधान्य है, अतएव हमारे व्यक्तित्त्व में होने वाला आत्म और अनात्म का संघर्ष मुख्यतः कायम है और चूँकि ललित साहित्य मूलतः रचनात्मक होता है, अतः उसकी प्रेरणा में काम वृत्ति की प्रमुखता असंदिग्ध है।' 25

कहना न होगा कि साहित्य के प्रेरणा के प्रश्न पर उन पर फ्रायड का प्रभाव दिखाई देता है, तो कल्पना सिद्धान्त के विवेचन में वे रिचर्डस से प्रभावित हैं। उन्होंने आस्थ के चरण की भूमिका में स्वयं स्वीकार किया है कि, 'आस्था के चरण' में संकलित निबंधों में सबसे पहली रचना है- 'साहित्य में कल्पना का उपयोग' । यह निबन्ध मैंने सन् 1936 में रिचर्ड्स की पुस्तक 'प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्स' से प्रेरित होकर लिखा था।' ... 'साहित्य में कल्पना का उपयोग' शीर्षक निबन्ध में मैंने रिचर्डस के तद्विषयक विवेचन से केवल प्रेरणा ही नहीं ली थी. वरन् उनके मूल विचारों को आधार रूप में भी ग्रहण किया था।'

रसानुभूति-काव्यानुभूति का स्वरूप एवं प्रक्रिया:

डॉ० नगेन्द्र रस को काव्य का चरम मूल्य एवं प्राण तत्त्व मानते हैं। उनके अनुसार, 'भारतीय काव्यशास्त्र में रस के तीन प्रचलित अर्थ है-

(१) वस्तुपरक अर्थ जिसके अनुसार रस काव्यगत है।

(२) भावपरक अर्थ जिसके अनुसार रस की स्थिति सहृदय में हैं।

(३) आनन्दपरक अर्थ जिसके अनुसार रस सहृदयगत ही है। व्यक्ति, संसर्गों से मुक्त आत्म विश्राति की आनन्दमयी चेतना का नाम रस है।' 27

डॉ० नगेन्द्र की रस विषयक व्याख्या बहुत विस्तृत फलक पर टिकी है और उनकी तो यहाँ तक मान्यता है कि 'अलंकार ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य सिद्धान्तों का विकास इसके पश्चात् और इसी के सन्दर्भ में है।' 28 इतना ही नहीं आभिजात्यवाद, स्वच्छन्दतावाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद और प्रतीकवाद जैसे पश्चिम के

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

विभिन्न वादों के आसपास रस सिद्धान्त को ही देखते हैं। कुछ विचार द्रष्टव्य हैं-

- आभिजत्यवाद की 'वैचित्र्य', 'अन्विति' आदि सभी धारणाओं का रस सिद्धात से मूल है।' 29
- भावना और कल्पना पर टिका स्वच्छन्दतावाद का सिद्धान्त भी रस सिद्धान्त से दूर नहीं है।'30
- यथार्थवाद का चरम आधार भौतिक जीवन है, यह एक प्रकार से विज्ञान का कलात्मक रूप है। इस कला का आस्वाद भी रागात्मक अनुभूति का रूप ही है बौद्धिक अनुभूति नहीं।' 31
- प्रतीकवाद का रस सिद्धान्त से कोई विरोध नहीं है, क्योंकि दोनों आत्मपरक हैं।' 32
- चित्रकला के क्षेत्र में प्रभाववाद भी कलात्मक अभिव्यक्ति और आस्वाद में रस से दूर नहीं है। यह रागात्मकता ही प्रभाववाद विवाद एवं रस-सिद्धान्त का मिलन बिन्दु है।' 33
- अभिव्यक्ति को प्रधानता देने वाला अभिव्यंजनावाद भी रस सिद्धान्त की भाँति आत्मपरक सिद्धान्त है।' 34
- यह नगेन्द्र जी की स्थापना का महत्त्वपूर्ण पक्ष है कि वे रस की व्याख्या के लिए एक व्यापक आधार निर्मित करते हैं, किन्तु उनके चिन्तन का कमजार पक्ष वहाँ दिखाई देता है, जहाँ वे रस को सार्वकालिक एवं सार्वभौतिक काव्य मूल्य मान लेते हैं। इसीलिए उनका रसवाद छायावादोत्तर समीक्षा में सर्वाधिक विवाद का भी विषय बना। जगदीश गुप्त, अज्ञेय, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी ने उनके रसवाद का खण्डन किया। और अपने रस सिद्धान्त की स्थापना के क्रम में वे भारतीय काव्यशास्त्र की परम्पराओं से मिलते- टकराते हैं। पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवि-आलोचक काव्यास्वाद में आन्नद के समर्थक है तो भारतीय रस प्रकल्पना आनन्द रूप है, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के यहाँ रस 'हृदय की मुक्तावस्था' है। डॉ० नगेन्द्र रिचर्ड्स से प्रभाव ग्रहण करते हुए शैव दर्शन के आनन्दवादी स्वर को प्रधानता दिया है, इसीलिए वे रस विवेचन में अभिनवगुप्त एवं जयशंकर प्रसाद के विचार के ऋणी हैं। डॉ० नगेन्द्र ने 'रस सिद्धान्त' नामक ग्रंथ में रसानुभूति के सम्बन्ध में तीन प्रश्न मौलिक ढंग से उठाये हैं-
- भावानुभूति एवं रसानुभूति का क्या सम्बन्ध है?
- क्या रसानुभूति अनिवार्यतः आनन्दमयी चेतना है?
- यदि है, तो इस आनन्द का स्वरूप क्या है?

इनका उत्तर स्वयं उन्होंने अपने आलोचना कर्म के माध्यम से दिया है। प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है- 'प्रत्यक्ष, परोक्ष, परगत, सुखद, दुःखद - किसी प्रकार की भावानुभूति रसानुभूति नहीं है।' 35

द्वितीय प्रश्न का उत्तर नगेन्द्र जी की इन पंक्तियों में है-

- रस की आनन्द रूपता के विरोध में प्रस्तुत सभी विकल्प या तो असिद्ध हो जाते हैं या प्रकारान्तर से आनन्द का ही संकेत देते हैं। (वही)
- क्योंकि काव्य के भावना का अर्थ ही अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करना है और अव्यवस्था में व्यवस्था ही आनन्द है। इस प्रकार जीवन के कटु अनुभव भी काव्य में अपने तत्त्वरूप संवेदना के समन्वित हो जाने से आनन्दप्रद बन जाते हैं।' 36

रस की व्याख्या के क्रम में आचार्य शुक्ल का आग्रह नैतिक संवेदना पर (लोकमंगल भावना पर) है तो डॉ० नगेन्द्र का बल आचार्य वाजपेयी की तरह आनन्दवादी पक्ष पर अधिक है। वे 'अनुभूति' से अलग एवं विशिष्ट 'आनन्द' को मानते हैं, क्योंकि रस खण्ड चेतना न होकर अखण्ड आन्नद चेतना है और सहित्य की चरमसिद्धि भी।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में उनका कथन है कि काव्यास्वाद कल्पनात्मक पुनः सृजन का आनन्द है- 'काव्यानुभूति भावना के कल्पनात्मक पुनः सृजन की आनन्दमयी अनुभूति है।' 37 किन्तु 'यह आनन्द केवल मनोरंजन का पर्याय ही नहीं इसका अभिप्राय है अन्तर्वृत्तियों का सामंजस्य ।' इसमें सन्देह नहीं कि नगेन्द्र जी यहाँ रिचर्ड्स के रसवाद से प्रभावित हैं। रिचर्ड्स भी कविता का मूल्य मूलतः रागात्मकता में ही स्वीकार करते हैं और भारतीय रस सिद्धान्त रस की सत्ता को सहृदय में मानता है तो रिब स भी भावक के मनः प्रभावों में ही काव्यानुभूति के मूल्य मानते हैं, किन्तु डॉ० नगेन्द्र की विशिष्टता यह है कि वे रसानुभूति एवं काव्यानुभूति को अनिवार्यतः आनन्दमयी परिणति मानते हैं। रिच 'आवेगों की व्यवस्था और क्रमबन्धन' को स्वीकार करते हुए भी आनन्द को न तो जीवन की मुख्य प्रेरक शक्ति मानते हैं, काव्यानुभूति की परिणति।

जहाँ तक काव्यास्वाद की प्रक्रिया का प्रश्न है संस्कृत काव्यशास्त्र में उसे 'साधारणीकरण' कहते हैं तो भट्टनायक इसे भावकत्व कहते हैं, अभिनव गुप्त इसे वाक्यार्थ-बोध के पश्चात् 'मानसीसाक्षात्कारात्मिकता प्रतीति' कहते हैं तो आचार्य शुक्ल साध साधारणीकरण की स्थापना को एक नया आयाम देते हैं- 'साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है। व्यक्ति तो विशेष ही रहता है, पर उसमें प्रतिष्ठा ऐसे ऐसे सामान्य धर्म की रहती है जिसके साक्षात्कार से सब श्रोताओं या पाठकों के मन में एक ही भाव का उदय थोड़ी बहुत हेर फेर से होता है। डॉ० नगेन्द्र को शुक्लजी की यह मान्यता स्वीकार नहीं है- 'विशेष रूप से सुरक्षित रखते हुए आलम्बन के साथ साधारिकरण की सिद्धि वास्तव में नहीं हो सकती। स्वयं शुक्ल जी को इसकी प्रतीति हुई है। इसीलिए वे अलम्बन से हटकर आलम्बनत्व या आलम्बन धर्म तक पहुँच गए हैं- और फिर उन्हें उसका नैतिक आधार प्रदान करना पड़ता है।' 38 आचार्य केशव प्रसाद मिश्र ने भी शुक्ल जी के आलम्बनत्व धर्म वाले सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया था। ऐसा लगता है कि नगेन्द्रजी भी मिश्र जी से प्रभावित हैं। आचार्य मिश्र 'चित्त की एकतान स्थिति' को प्रमाता का साधारणीकरण मानते हैं तो नगेन्द्र जी चित्त की एकतान स्थिति को साधारणीकरण का कारण नहीं बल्कि परिणति मानते हैं, क्योंकि नगेन्द्र जी के अनुसार, 'चित्त की एक तानता ही तो संवित विश्रान्ति है और वही रस है, अतः वह साधारणीकरण का कारण नहीं हो सकती, वह तो कार्य या परिणति है' 39 डॉ० नगेन्द्र कवि के संवेद्य या कवि अनुभूति के साधारणीकरण में विश्वास करते हैं जो उनकी विशिष्ट मान्यता है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार, 'साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कहते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति विद्यमान है।**काव्य की आत्मा एवं प्रयोजनः**

काव्य की आत्मा के प्रश्न पर वे अभिनव के ऋणी है और रस को काव्य का चरम मूल्य मानते हैं। वे 'अनुभूति' एवं 'आनन्द' को एक नहीं मानते, क्योंकि उनकी मान्यता है कि रस खण्ड चेतना है और यही साहित्य की चरमसिद्धि भी है। इसीलिए वे कहते हैं, काव्य का मूल प्रयोजन तो आनन्द ही है-सकल प्रयोजन मौलिभूतम-विगलित वेद्यान्तरमानन्दम्' 40 अरस्तू भी ज्ञानार्जन (शिक्षा) एवं आनन्द को प्रयोजन मानते है।

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

डॉ० नगेन्द्र तीन अन्य तत्त्वों की भी कल्पना करते हैं-भाव, कल्पना एवं बुद्धि और इसमें भाव को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं- 'मैं भाव को ही आधार मानता हूँ।' शेष दो सहायक है। अतः काव्य का आस्वाद मूलतः भाव का ही आस्वाद है- इन्द्रिय प्रकृत भाव का नहीं, वरन कल्पनागम्य शुद्ध अथवा निर्वैयक्तिक भाव का। आस्वाद के इसी रूप को शास्त्र में रस कहा गया है।' 41 इस प्रकार उनकी दृष्टि में आनन्द या रस पर्याय है एवं यही रस या आनन्द काव्य प्रयोजन है।

रस को काव्य काव्य का सार्वभौम भौम एवं सार्वकालिक तत्त्व मानते हुए भी नगेन्द्र जी कला के अभिव्यक्ति पक्ष की उपेक्षा नहीं करते। वे क्रोचे की तरह न तो यह मानते हैं कि अनुभूति का अभिव्यक्ति के बिना को कोई अस्तित्व नहीं है और रीतिवादियों की तरह यह कि अनुभूति का अभिव्यक्ति से पृथक अस्तित्व है, अनुभूति के तत्त्व अभिव्यक्ति के माध्यम से रूप धारण करते हैं। डॉ० नगेन्द्र अनुभूति को व्यापक महत्त्व देते हुए भी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति को तत्त्वतः अभिन्न मानते हैं। वे आचार्य शुक्ल की इस मान्यता के समर्थक हैं कि भाव प्रेरित वक्रता ही कविता के अन्तर्गत आती है। 'भाव के सौन्दर्य से दीप्त शब्द अर्थ का सौन्दर्य ही कविता है।' 42 यही मान्यता रस एवं ध्वनिवादियों की भी है।

डॉ० नगेन्द्र की दृष्टि कविता के स्वरूप को लेकर शास्त्रवादी दिखाई देती है, किन्तु वे आत्मानुभूति को ही साहित्य के प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं, इसीलिए उनके अनुसार 'अनुभूति' तत्त्व साहित्य का का सबसे व्यापक उपकरण है- 'अनुभूति की व्यापकता साहित्य की व्यापकता का सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण सिद्ध होती है।' 43 किन्तु यहाँ नगेन्द्र जी का अनुभूति से तात्पर्य रसानुभूति या रागात्मक अनुभूति है, जो छायावादी स्वानुभूति का पर्याय तो मालूम ही पड़ती है और उन पर क्रोचे के प्रभाव की ओर संकेत करती है। क्रोचे भी सहजानुभूति में अनुभूति, कल्पना, विचार और अभिव्यक्ति सभी को शामिल करते हैं, नगेन्द्र जी की भी धारणा है कि यह तीनों (कल्पना, विचार, अभिव्यक्ति) अनुभूति से स्वतः सम्बद्ध है। कल्पना और विचार क्षेत्र की व्यापकता व्यापक अनुभूति का प्रायः सहज परिणाम ही होती है।' 44

निष्कर्षत: डॉ० नगेन्द्र का काव्यचिन्तन हिन्दी आचार्यों में आचार्य शुक्ल एवं प्रसाद से प्रभावित है संस्कृत आचार्यों में भरत, भट्टनायक, अभिनवगुप्त का संस्कार बहुत सघन रूप में विद्यमान है, तो अरस्तू, लान्जाइनस, कॉलरिज, रिचर्ड्स, क्रोचे का भी ऋण उन पर है। एडलर और युंग का चिन्तन 'काव्य बिम्ब' पर झलकता है तो 'साकेत : एक अध्ययन' के विवेचन में अरस्तू के काव्यशास्त्र इटालवी एवं फ्रान्सीसी विद्वानों की, 'देव और उनकी कविता' में प्रतीकात्मकता, अभिव्यंजनावादियों की छाप है, 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएं में लान्जाइनस के औदात्य एवं स्वच्छन्दतावादी प्रतिमानों की छाया है, किन्तु डॉ० नगेन्द्र की विशिष्टता यह है कि 'वे भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्तों की तुलना से समन भूमि की खोज करते हैं।' 45 डॉ० नगेन्द्र ने स्वयं लिखा है कि 'भारत तथा पश्चिम के दर्शनों की तरह यहाँ के काव्यशास्त्र भी एक-दूसरे के पूरक हैं और पुनराख्यान आदि के द्वारा उनके आधार पर हमारे अपने साहित्य की परम्परा के अनुकूल एक संश्लिष्ट आधुनिक काव्यशास्त्र का निर्माण सहज सम्भव है।' 46 डॉ० नगेन्द्र का चिन्तन कर्म इसी दिशा में सक्रिय रहा है और 'अरस्तू का काव्यशास्त्र', 'काव्य मे ं उदात्त तत्त्व', 'काव्य बिम्ब', 'नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ' इसका स्पष्ट प्रमाण है। किन्तु तटस्थ एवं वस्तुपरक दृष्टि (अधिकांश स्थल पर) उनकी सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक आलोचना में दिखाई देती है, जो उन्हें अन्धानुयायी नहीं बनती, किन्तु नयी कविता के मूल्यांकन में उन्हें भ्रमित अवश्य करती है। कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में, 'पश्चिम उन्हें सोख नहीं लेता और पूर्व उन्हें बहा नहीं पाता-वे दोनों धाराओं में खड़े होकर नई धारा खोजते हैं।' अतएव डॉ० कुमार विमल का यह कथन उनके काव्य चिन्तक रूप को पूरी महत्ता के साथ उद्घाटित करने में समर्थ है- 'अन्तरराष्ट्रीय संसर्ग-संपर्क से संचालित आधुनिक युग में इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रों के बीच परस्पर वैचारिक आदान-प्रदान हो और एक दूसरे की शाहाल में उनके पुनराख्यान का व्यवस्थित प्रयास हो । वस्तुतः स सार्वकालिक मानदण्डों की स्थापना हो सकेगी। इस दृष्टि से मानव महान के आधार फलक पर भारतीय काव्यशास्त्र के अध्ययन विश्लेषण और पुनराख्यान या भारतीय और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के समन्वय और संश्लेषण के सन्दर्भ में डॉ० नगेन्द्र की कृतियों का प्रास्थानिक महत्त्व है।' 47

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 21.
2. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 54.
3. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1995. पृ. 352.
4. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 31.
5. वाजपेयी नन्ददुलारे. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1952. पृ. 95.
6. वाजपेयी नन्ददुलारे. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1952. पृ. 94.
7. वाजपेयी नन्ददुलारे. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1952. पृ. 96.
8. वाजपेयी नन्ददुलारे. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1952. पृ. 296.
9. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 401.
10. वाजपेयी नन्ददुलारे. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1952. पृ. 249.
11. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1995. पृ. 365.
12. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 370.
13. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य: सृजन और समीक्षा. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1955. पृ. 92.
14. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य: सृजन और समीक्षा. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1955. पृ. 145.
15. वाजपेयी नन्ददुलारे. नये साहित्य, नये प्रश्न. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1955. पृ. 36.
16. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 21-22.
17. वाजपेयी नन्ददुलारे. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1952. पृ. 168.

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

18. वाजपेयी नन्ददुलारे. नया साहित्य, नये प्रश्न. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1955. पृ. 36.
19. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 24.
20. वाजपेयी नन्ददुलारे. आधुनिक साहित्य. इलाहाबाद: साहित्य भवन; 1951. पृ. 24.
21. वाजपेयी नन्ददुलारे. नई कविता. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1954. पृ. 54.
22. वाजपेयी नन्ददुलारे. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी. नई दिल्ली: साहित्य भवन; 1952. पृ. 244.
23. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 108.
24. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 113.
25. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 113.
26. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 6-7.
27. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 319.
28. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 321.
29. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 330.
30. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 331.
31. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 336.
32. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 339.
33. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 340.
34. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 341.
35. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 109.
36. नगेन्द्र. रीतिकाव्य की भूमिका. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1955. पृ. 63.
37. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 127.
38. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 208.
39. नगेन्द्र. रस सिद्धान्त. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1964. पृ. 209.
40. नगेन्द्र. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1951. पृ. 12.
41. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 82.
42. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 88.
43. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 184.
44. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 185.
45. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1995. पृ. 543.
46. नगेन्द्र. आस्था के चरण. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 1949. पृ. 11.
47. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1995. पृ. 450.
48. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1995. पृ. 452.
49. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1995. पृ. 456.
50. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 1995. पृ. 458.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/